शैक्षिक प्रौद्योगिकी और शिक्षा का व्यवसायीकरण

जवरीमल्ल पारख

सभी को शिक्षा सुलभ कराने के लिए बहुत से प्रयास हुए हैं। इसके लिए पत्राचार, दूर और मुक्त शिक्षा के माध्यमों को अपनाया गया है। दूर और मुक्त शिक्षा को मुमकिन बनाने में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की अहम भूमिका रही है।

इस लेख में बताया गया है सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से जारी शिक्षा प्रक्रिया ने शिक्षा के व्यवसायीकरण को बढ़ावा दिया है और इसका प्रयोग शिक्षा को बाजार के एक उत्पाद में बदलने के लिए किया जा रहा है।

जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो हमारे सामने गांव में किसी पेड़ के नीचे बैठे छोटे बच्चों की तस्वीर उभर आती है जिसे कोई चश्मा लगाए और खादी के कपड़े पहने अध्यापक पढ़ा रहा है या साड़ी पहने कोई शिक्षिका पढ़ा रही है। हममें से बहुतों को याद होगा कि फिल्म 'श्री 420' में नरगिस भी ऐसी ही एक अध्यापिका होती है और वह भी इसी तरह मुंबई जैसे शहर में बच्चों को पेड़ के नीचे खुले में पढ़ाती है। आज भी भारत के लगभग सात लाख स्कूलों में से 75000 (10.15 प्रतिशत) स्कूलों में एक भी क्लासरूम नहीं है। लगभग एक लाख स्कूल ऐसे हैं जिनके पास सिर्फ एक कमरा है। यह स्थिति भारत के गांवों की ही नहीं है बल्कि शहरों की भी है। शहरों में स्थित स्कूलों में से 13.9 प्रतिशत में और गांवों में 9.6 प्रतिशत में कोई भवन नहीं है। इन स्कूलों में बच्चे या तो टैंटों में पढ़ते हैं या फिर खुले आकाश के नीचे। यह उस आदर्श का अनुकरण नहीं है जिसको अब भी शांति निकेतन में देखा जा सकता है और जिसकी संकल्पना टैगोर और गांधी ने की थी। यह वह मजबूरी है जिसकी वजह से गांवों और शहरों के वे विद्यार्थी उन सरकारी स्कूलों में पढ़ने के लिए विवश हैं जिन स्कूलों के पास न भवन है और न ही मेज-कुर्सियां। यही नहीं 15.67 प्रतिशत स्कूलों में या तो एक अध्यापक है या एक भी नहीं। आजादी के साठ साल बाद भी भारत की कुल आबादी की एक तिहाई से ज्यादा निरक्षर है। प्राथमिक स्कूलों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों में से सिर्फ 79 प्रतिशत ही पांचवीं कक्षा तक पहुंच पाते हैं। आज से दस वर्ष पूर्व इंडिया टुडे द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार सरकारी स्कूलों में जहां 14 वर्ष तक की आयु तक पढ़ने वाले विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा मिलनी चाहिए लेकिन ऐसे विद्यार्थियों को भी प्रतिवर्ष 366 रुपये व्यय करने पड़ते थे। यदि एक परिवार में दो बच्चे भी माने जाएं तो इसका अर्थ हुआ 732 रुपये प्रतिवर्ष या साठ रुपये प्रतिमाह या दो रुपये प्रतिदिन। गांवों में खेतमजदूरी करने वाले गरीब लोगों के लिए अपने बच्चों के लिए दो रुपये प्रतिदिन निकालना आसान नहीं है क्योंकि न तो इन खेतमजदूरों को साल के सभी दिन मजदूरी मिलती है और जब मिलती है तो वह बीस-पच्चीस रुपये प्रतिदिन से ज्यादा नहीं होती। भारत के सबसे गरीब 40 फीसद आबादी का कुल आय में हिस्सा सिर्फ 21 प्रतिशत है जबकि सबसे अमीर बीस प्रतिशत का हिस्सा उनसे दुगुना 43 प्रतिशत।

लेखक परिचय :

हिन्दी के आलोचक, सिनेमा और मीडिया विशेषज्ञ, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली में प्रोफेसर।

पुस्तक : 'हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र', ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली; 'लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ', अनामिका पब्लिशर्स दिल्ली; जन संचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली।

सम्पर्क :

जे-1, यमुना, इग्नू, मैदानगढ़ी,
नई दिल्ली - 110068

लेकिन इसी भारत में ऐसे स्कूल भी हैं जिनमें शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को प्रतिमाह दस हजार से बीस हजार रुपये फीस देनी होती है और जिन कमरों में वे बैठकर पढ़ते हैं वे वातानुकूलित होते हैं, जिन बसों में बैठकर वे स्कूल पहुंचते हैं वे भी वातानुकूलित होती हैं और ऐसी स्कूलों के वातानुकूलित कैंटीन में मिलने वाला भोजन और नाश्ता भी इंटरकोंटिनेंटल होता है। ये स्कूल सरकारी सहायता से नहीं चलते और न ही यहां पढ़ने वाले बच्चों की फीस माफ होती है। स्पष्ट ही ऐसे स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को आरंभ से ही इस बात का एहसास हो जाता है कि वे सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों से अलग और श्रेष्ठ हैं। शिक्षा प्राप्त कर उन्हें रोजी-रोटी और रोजगार की चिंताओं को हल नहीं करना है बल्कि दूसरे अमीरों से ज्यादा अमीर, दूसरों से ज्यादा शक्तिशाली और दूसरों से ज्यादा नामवर बनना है। इस प्रकार इन अभिजात संस्थानों में पढ़ने वाले बच्चों में आरंभ से ही अपनी उन्नति और अपना विकास की अवधारणा ही बलवती रहती है। वहां आपसी प्रतिद्वंद्विता द्वारा दूसरों को पछाड़कर आगे निकलने में ही प्रतिभा की अभिव्यक्ति है।

भारत जैसे विषमता वाले देश में दो तरह की शिक्षा का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह विषमता जितनी अधिक बढ़ती जा रही है उसकी अभिव्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में होना भी उतना ही स्वाभाविक है। आजादी के बाद स्थापित प्रायः सभी आयोगों ने इस विषमता की तरफ ध्यान दिलाया है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि इसके बावजूद शिक्षा के लिए जो भी नीतियां बनाई गईं उसने समाज में व्याप्त विषमता को कम करने की बजाए शिक्षा को उस विषमता को बढ़ाने और उसे स्थायी बनाने का माध्यम बनाया। यह विषमता सिर्फ स्कूली शिक्षा तक सीमित नहीं है इसे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी देखा जा सकता है। इस विषमता का संबंध सिर्फ भारत से नहीं है बल्कि यह अंतर्राष्ट्रीय फिनोमिना है और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने इसे और बढ़ाया है। उच्च शिक्षा पर यूनेस्को द्वारा जारी स्थिति पत्र भी यह स्वीकार करता है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बाजार के दृष्टिकोण के अपनाए जाने ने विकासशील देशों में उच्च शिक्षा के लिए सरकारी अनुदान लगातार कम होता जा रहा है और आगे आने वाले दिनों में इसके और कम होने की संभावना है। ऐसी स्थिति में उच्च शिक्षा के इच्छुक विद्यार्थियों को निजी शिक्षा संस्थानों के पास जाना होगा जो मंहगी शिक्षा प्रदान करेंगे और यह स्थिति संपन्न लोगों के पक्ष में और गरीबों के लिए हानिकारक होगी। इस संबंध में जो बहसें चल रही हैं उनका हवाला देते हुए यह भी कहा गया है कि शिक्षा की गुणवत्ता को कैसे सुनिश्चित किया जाएगा और ऐसे शिक्षा संस्थानों को जिनकी साख नहीं हैं और जो महज 'डिप्लोमा मिल्स' हैं उनसे उपभोक्ता को कैसे बचाया जा सकेगा। इसके साथ ही जुड़ा सवाल यह है कि जो योग्यता ऐसे संस्थान प्रदान करेंगे उनका मूल्य कितना होगा और रोजगार बाजार में उन्हें कितना स्वीकार किया जाएगा। और सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि दूसरे देशों से आने वाले शिक्षा प्रदाता उस देश के विकास में किस तरह की मदद देंगे। (यूनेस्को एडूकेशन पोजिशन पेपर, पृ. 9)।

उच्च शिक्षा का विस्तार और दूर शिक्षा

स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद उच्च शिक्षा के लिए कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए जाने वाले विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या को देखकर भारत में पत्राचार संस्थानों की स्थापना की गई थी ताकि जो विद्यार्थी नियमित कक्षाओं में किसी वजह से शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते वे इन संस्थानों से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। पत्राचार द्वारा शिक्षा की शुरुआत दुनिया भर में इसलिए मुमकिन हो सकी क्योंकि परिवहन के नये तीव्र गति वाले साधनों जैसे रेलगाड़ी, बस, कार और हवाई जहाजों ने यह संभव बनाया कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल को जल्दी-से-जल्दी पहुंचाया जा सकता था। यह इसलिए मुमकिन हो सका कि मुद्रण की प्रणाली में जो विकास हुआ था उससे किताबों की हजारों प्रतियां कम समय में मुद्रित की जा सकती थी। इन्हीं दो चीजों के कारण पत्राचार द्वारा शिक्षा प्रदान करना संभव हो सका था। लेकिन इस संदर्भ में इस बात को ध्यान रखना आवश्यक है कि पत्राचार द्वारा ऐसी शिक्षा दिया जाना मुमकिन नहीं था जिसमें किसी प्रशिक्षित और अनुभवी शिक्षक की देखरेख में प्रायोगिक शिक्षा या व्यावहारिक प्रशिक्षण दिए जाने की आवश्यकता होती है। यही वजह है कि विज्ञान, इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पत्राचार द्वारा शिक्षा दिया जाना मुमकिन नहीं हो सका। पत्राचार द्वारा दी जाने वाली शिक्षा में पाठ्यचर्या और परीक्षा की पद्धति वही रहती थी जो नियमित विद्यार्थियों को उपलब्ध थी। अंतर सिर्फ यह था कि विद्यार्थियों को कक्षाओं में उपस्थित नहीं होना होता था और कक्षाओं में अध्यापकों से संवाद द्वारा वह जो ज्ञान प्राप्त करता था, उसकी क्षतिपूर्ति उस मुद्रित सामग्री द्वारा करने की कोशिश की जाती थी, जो पढ़ाई की शुरुआत में विद्यार्थी को भेजी जाती थी। इस तरह पत्राचार की पूरी पद्धति नियमित अध्ययन की तुलना में सीमित और दोयम दर्जे की समझी गई और इस प्रणाली को वे ही विद्यार्थी अपनाते थे जिन्हें नियमित पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं मिल पाता था या वे जो नियमित प्रवेश ले सकने की स्थिति में नहीं होते थे। कह सकते हैं कि पत्राचार ने उच्च शिक्षा के प्रसार में सीमित लेकिन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

इसके बाद दूर शिक्षा का विचार सामने आया। दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली की शुरुआत दुनिया में दो तरह से हुई। एक, क्रांति के बाद चीन जैसे पिछड़े देश में जहां श्रमिकों और किसानों की बड़ी संख्या निरक्षर थी और जिन्हें आधुनिक परिवर्तनों में भागीदार

बनाने के लिए शिक्षित करना जरूरी था। इनमें ऐसे युवाओं की संख्या भी बहुत ज्यादा थी जिन्हें अब स्कूलों और कॉलेजों में नियमित रूप से पढ़ने के लिए भेजना संभव नहीं था। चीन ने इसके लिए रेडियो का सहारा लिया। रेडियो एक ऐसा माध्यम था जिसकी पहुंच ही व्यापक नहीं थी बल्कि जो गरीब से गरीब लोगों को आसानी से उपलब्ध कराया जा सकता था। बाद में इस कार्य में टेलीविजन का उपयोग किया जाने लगा। 1960 के दशक के आरंभ में ही चीन में टेलीविजन विश्वविद्यालय की स्थापना बीजिंग में हो चुकी थी जिसका बाद में अन्य शहरों में भी विस्तार किया गया। 1979 में इन्हें 'चाइना सेंट्रल रेडियो एंड टेलीविजन युनिवर्सिटी' नाम दिया गया जिनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की कुल संख्या लगभग तेईस लाख है। चीन का यह वि   वविद्यालय रेडियो, टेलीविजन के साथ-साथ मुद्रित सामग्री और मल्टीमीडिया का भी उपयोग करता है।

दूसरी शुरुआत ब्रिटेन से हुई जिसने सन 1969 में पहला मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किया। यह दुनिया का भी पहला मुक्त विश्वविद्यालय था। इस विश्वविद्यालय द्वारा नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त करने से किसी भी वजह से वंचित रह गए विद्यार्थियों के लिए उसे आगे जारी रखने का एक माध्यम बन गया। ब्रिटेन में उच्च शिक्षा के परंपरागत संस्थान पहले से पर्याप्त संख्या में थे और यह नहीं कहा जा सकता कि वहां के लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधा प्राप्त नहीं थी। लेकिन वे विद्यार्थी जिन्होंने किसी वजह से नियमित अध्ययन छोड़ दिया था या जो अपने रोजगार के क्षेत्र में और उच्चतर ज्ञान या कौशल हासिल करना चाहते थे, उनके लिए मुक्त शिक्षा प्रणाली एक जरिया बनी। इसके लिए विद्यार्थी को न तो नियमित कक्षाओं में उपस्थित होना जरूरी था और न ही बंधी-बंधाई समय-सारणी में अध्ययन करना जरूरी था। इसके विपरीत वे अपनी जरूरत और अपनी सुविधा अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र थे। कक्षाओं में प्राप्त होने वाले ज्ञान को मुद्रित और ऑडियो-वीडियो माध्यम द्वारा उन्हें उपलब्ध कराया गया। अध्यापकों से वे सप्ताहांत में संपर्क और संवाद कर सकते थे। उनसे बातचीत करने के लिए वे टेलीफोन और बाद में इंटरनेट का भी सहारा लेने लगे। प्रायोगिक ज्ञान के लिए प्रयोगशालाएं और प्रशिक्षण के लिए आवश्यक सुविधाएं सप्ताहांतों में उपलब्ध कराई गई। इसी का विकास आगे ऑन लाइन शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए किया गया। ब्रिटेन और चीन दोनों के उदाहरणों से स्पष्ट है कि मुक्त शिक्षा प्रणाली में मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पत्राचार पाठ्यक्रमों के विपरीत दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली परंपरागत विश्वविद्यालयों का अंग बनकर नहीं उभरी बल्कि उसका विकास स्वतंत्र प्रणाली के रूप में हुआ। मुक्त विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रम बनाए और अपनी अध्ययन और अध्यापन पद्धति विकसित की। इसमें दो बातों का खासतौर पर ध्यान दिया गया। एक, विद्यार्थी को शिक्षा के क्षेत्र के सभी तरह के पाठ्यक्रमों को गुणवत्ता के स्तर पर कोई समझौता किए बिना उपलब्ध कराना। दो, विद्यार्थियों को उनकी सुविधा के अनुसार ऐसा लचीलापन प्रदान करना ताकि वे अपना अध्ययन किसी भी परिस्थिति में रहते हुए भी जारी रख सकें। शिक्षा का यह नया दर्शन इसीलिए संभव हो सका क्योंकि सूचना और संचार की नयी प्रौद्योगिकी ने इसके लिए जरूरी संसाधन मुहैया करा दिए थे। फिर भी इस बात को रेखांकित करना जरूरी है कि एक ही दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली दो भिन्न तरह की व्यवस्थाओं में दो भिन्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्रयुक्त की गई थी। भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक स्थितियां ब्रिटेन के बजाए चीन के अधिक नजदीक थी, लेकिन यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि भारत ने इस क्षेत्र में ब्रिटेन के अनुकरण को वरीयता दी न कि चीन के अनुभवों को।

भारत ने भी नब्बे के दशक में मुक्त शिक्षा प्रणाली को अपनाया। आंध प्रदेश में पहला मुक्त विश्वविद्यालय 1982 में स्थापित किया गया। इसके बाद सन 1985 में पहला राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली में स्थापित किया गया। आज भारत में तेरह मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके हैं जिनमें लगभग 20 लाख विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन मुक्त विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने के लिए मुद्रित सामग्री और ऑडियो-वीडियो कार्यक्रमों का ही प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि रेडियो और टेलीविजन प्रसारणों का भी प्रयोग किया जाता है। भारत पहला देश है जिसने शिक्षा की जरूरत को ध्यान में रखते हुए एक स्वतंत्र उपग्रह स्थापित किया है जिसे एडुसेट के नाम से जाना जाता है। इस कृत्रिम उपग्रह की वजह से आज विभिन्न शिक्षा संस्थानों द्वारा संचालित चार टेलीविजन चैनल काम कर रहे हैं जिन्हें ज्ञान दर्शन के नाम से जाना जाता है। इसी तरह इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय सहित विभिन्न शिक्षा संस्थानों द्वारा अपने शैक्षिक एफएम रेडियो चैनल चलाए जा रहे हैं। भारत ने मुक्त शिक्षा प्रणाली को स्कूली शिक्षा में भी लागू किया है और इसके लिए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी संस्थान की स्थापना की है ताकि स्कूली शिक्षा से वंचित रह जाने वाले विद्यार्थियों को नियमित स्कूल गए बिना स्कूली शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल सके।

इस तरह हम देखते हैं कि मुक्त शिक्षा प्रणाली विकसित और विकासशील, समाजवादी और गैर-समाजवादी सभी तरह के देशों द्वारा अपनाई जा रही है। उन देशों में (जैसे अमरीका) जहां मुक्त शिक्षा प्रणाली को ठीक उसी रूप में नहीं अपनाया गया है जिस रूप में इसे ब्रिटेन, भारत, कनाडा या चीन में अपनाया गया है, वहां भी जनसंचार की नयी प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल शिक्षा के क्षेत्र में जोर-शोर से हो रहा है और वर्चुअल युनिवर्सिटी या ऑन लाइन युनिवर्सिटी की अवधारणा पर तीखी बहस जारी है। परंपरागत

शिक्षा प्रणाली और दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली का बुनियादी अंतर शैक्षिक परिसर की उपस्थिति और अनुपस्थिति से है। परंपरागत शिक्षा प्रणाली जो किसी न किसी रूप में तब से कायम है जब से शिक्षा का संस्थानीकरण हुआ है और जो शिक्षा प्रदान करने के लिए परिसरों की स्थापना करती है, जहां विद्यार्थी और अध्यापक दोनों एकत्र होते हैं और पारस्परिक संवाद द्वारा ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं। लेकिन दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली में ऐसा कोई परिसर नहीं होता जहां नियमित रूप से अध्यापक और विद्यार्थी एकत्र होते हों। सप्ताहांतों में होने वाले परामर्श सत्रों में उपस्थिति भी अनिवार्य नहीं होती और इस कार्य को भी ऑन लाइन या अन्य किसी प्रौद्योगिकी द्वारा संपन्न किया जा सकता है। दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली में छात्र और अध्यापक के बीच संवाद केंद्र में नहीं होता। कक्षाओं में दिए जाने वाले ज्ञान को ऐसी पाठ्यसामग्री के रूप में विद्यार्थियों तक पहुंचाया जाता है जो या तो मुद्रित रूप में होती है या दृश्य-श्रव्य माध्यम के रूप में या फिर मल्टी-मीडिया रूप में। कई बार ये तीनों रूप सम्मिलित रूप में भी पाठ्यसामग्री के रूप में विद्यार्थी को उपलब्ध कराए जाते हैं। इस प्रविधि में विद्यार्थी को अध्यापकों से प्रत्यक्ष संवाद करने का अवसर नहीं होता। वह अध्यापक से सीधे प्राप्त करने वाले ज्ञान को इस पाठ्यसामग्री के द्वारा प्राप्त करता है। इस तरह कह सकते हैं कि अध्यापक को पाठ्यसामग्री के द्वारा विस्थापित किया जाता है। परंपरागत विश्वविद्यालय में कक्षा आधारित पठन-पाठन में एक अध्यापक अधिकतम पचास-साठ विद्यार्थियों को ही पढ़ा सकता है जबकि इस तरह की सामग्री हजारों-लाखों विद्यार्थियों को उपलब्ध कराई जा सकती है। इसका प्रथमदृष्ट्या लाभ यह भी नजर आता है कि कक्षा आधारित पठन-पाठन में प्रत्येक विद्यार्थी को सबसे सक्षम अध्यापक से पढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता जबकि दूर शिक्षा में विद्यार्थियों को ऐसी सामग्री उपलब्ध कराई जा सकती है जिन्हें उस विषय के सर्वश्रेष्ठ अध्यापकों ने तैयार किया हो और जिसे तैयार करने की प्रक्रिया में अन्य श्रेष्ठ अध्यापकों का योगदान भी रहा हो। इस सामग्री के अलावा विद्यार्थी अन्य माध्यमों का उपयोग करते हुए अपने ज्ञान का विस्तार कर सकता है। सामग्री चाहे मुद्रित रूप में प्राप्त हुई हो या ऑन लाइन वह इसका उपयोग अपनी इच्छा अनुसार कर सकता है जबकि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी को निर्धारित समय-सारणी के अनुसार ही अपना अध्ययन करना होता है और जिन कक्षाओं में वह उपस्थित होने में असमर्थ रहता है उसका नुकसान उठाना पड़ता है। यही नहीं ऑन लाइन शिक्षा में पाठ्य सामग्री में समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन और संशोधन किया जा सकता है जबकि कक्षाओं में ऐसा मुमकिन नहीं होता। उपर्युक्त व्याख्या से साफ है कि दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली में शैक्षिक प्रौद्योगिकी का केंद्रीय महत्त्व है।

शिक्षा की नयी प्रौद्योगिकी और व्यवसायीकरण

मुद्रित पाठ्य सामग्री हो या मल्टीमीडिया यह स्पष्ट है कि इनके निर्माण की प्रक्रिया में शैक्षिक निवेश का जितना महत्त्व होता है उससे ज्यादा महत्त्व उस भौतिक प्रक्रिया का हो जाता है जिसके द्वारा पाठ्यसामग्री का निर्माण होता है और उसे विद्यार्थियों तक पहुंचाया जाता है। स्पष्ट ही यह प्रक्रिया उस औद्योगिक प्रक्रिया से मेल खाती है जो उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त होती है। यहां शैक्षिक निवेश जिसको शिक्षक उपलब्ध कराता है वह स्वयं ऐसे 'ज्ञान रूपी कच्चे माल' या ऐसी 'सेवा' की तरह है जिसे उचित दामों पर खरीद कर सामग्री के निर्माण में इस्तेमाल किया जा सकता है। दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली में 'ज्ञान' और 'सेवा' को खरीदा जाता है। परंपरागत विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की तरह यहां उन्हें स्थायी नियुक्ति नहीं दी जाती बल्कि इन परंपरागत विश्वविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों या सेवानिवृत्त हुए शिक्षकों के 'ज्ञान' और 'सेवा' का उपयोग किया जाता है। दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली में जो स्थायी अध्यापक रखे जाते हैं वे अध्यापक कम और एक तरह के मैनेजर अधिक होते हैं जिनका काम होता है कि वे इन प्रक्रियाओं को पूर्ण होने की ठीक से देखरेख करे उन्हें 'उपभोक्ताओं' तक पहुंचाने में सहयोग दें। उनकी कुशलता उनके शैक्षिक ज्ञान में नहीं बल्कि शैक्षिक सामग्री के सफलतम और प्रभावशाली उत्पादन और संप्रेषण करा सकने में है।

उपर्युक्त संदर्भ में विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली में 'ज्ञान' से ज्यादा महत्त्व उसके संप्रेषण का है। यहां संप्रेषण 'कम्युनिकेशन' और 'डिलीवरी' दोनों अर्थों में है। इन दोनों प्रकार्यों में सूचना, संचार, मुद्रण और परिवहन प्रौद्योगिकियों की खास भूमिका है। इन प्रकार्यों को संपन्न करने वाले टेक्नोक्रेट उन अध्यापकों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं जो शिक्षक के 'ज्ञान' को ऐसे फॉरमेट में ढालकर पेश करता है जिससे कि उसका संप्रेषण और सुपुर्दगी दोनों प्रभावी रूप में संभव हो सकती है। इस तरह प्रौद्योगिकी की भूमिका बढ़ने के साथ-साथ शिक्षक की भूमिका सीमित होती जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रौद्योगिकी के उपयोग की जरूरत सिर्फ दूर और मुक्त शिक्षा संस्थानों तक सीमित नहीं रह सकती। इसका लाभ परंपरागत कॉलेज और विश्वविद्यालय भी उठाने की ओर तत्पर होते हैं। लेकिन इसके लिए आवश्यक पूंजी का बंदोबस्त कर सकने की क्षमता ही यह तय कर पाती है कि कौन से संस्थान कितना और कैसा उपयोग कर पाते हैं। इस दृष्टि से परंपरागत शिक्षा संस्थानों में उत्कर्षता की श्रेणीबद्धता का निर्माण हो जाता है। यानी कि जिन संस्थानों में नयी शैक्षिक प्रौद्योगिकी को उपलब्ध करा सकने की क्षमता ज्यादा होती है,

उनकी तुलना में वे संस्थान जिनमें यह क्षमता कम होती है या जो अब भी पुराने ढर्रे पर चल रहे होते हैं उन्हें कमतर आंका जाता है। इस प्रकार नयी प्रौद्योगिकी शिक्षा के क्षेत्र में पूंजी निवेश की संभावना के लिए आधार तैयार करने में मदद करती है। पूंजी निवेश की बढ़ती संभावना शिक्षा के क्षेत्र में निजी पूंजी के प्रवेश के लिए भी माहौल बनाती है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जब संस्कृति के दूसरे क्षेत्रों में पहले से ही बाजार का प्रवेश हो चुका है, शिक्षा के व्यवसायीकरण को लंबे समय तक रोकना लगभग नामुमकिन हो जाता है। यही वजह है कि यूनेस्को ने भी भूमंडलीकरण के दौर में उच्च शिक्षा से संबंधित स्थितिपत्र में इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि इसका लाभ संपन्न देशों को मिलता है और कमजोर और गरीब देशों पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस स्थितिपत्र के अनुसार, "भूमंडलीकरण एक ऐसी बहुमुखी प्रक्रिया है जिसका उच्च शिक्षा के लिए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक निहितार्थ होते हैं। यह ऐसे समय नयी चुनौतियां प्रस्तुत करता है जब राष्ट्र-राज्य अकेला उच्च शिक्षा प्रदान नहीं करता और शिक्षा के क्षेत्र में निर्णय लेने में शिक्षक समुदाय का एकाधिकार समाप्त हो गया है। ये चुनौतियां सिर्फ उपलब्धता, समानता, धन मुहैया कराना और गुणवत्ता जैसे मसले तक सीमित नहीं है बल्कि इनका संबंध राष्ट्रीय संप्रभुता, सांस्कृतिक विविधता, गरीबी और टिकाऊ विकास से भी है। इसके अलावा और कहीं अधिक बुनियादी प्रश्न यह है कि शिक्षा सेवाओं के क्षेत्र में सीमापारीय उच्च शिक्षा प्रावधान और व्यापार के उभार ने शिक्षा को बाजार के दायरे में ला दिया है और इसका परिणाम यह हुआ है कि सार्वजनिक नीति परिप्रेक्ष्य के अनुसार उच्च शिक्षा को नियमित करने की राज्य की क्षमता पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। राज्य की नीति निर्माण की क्षमता में गिरावट का कमजोर और गरीब देशों पर नकारात्मक और समृद्ध देशों पर लाभप्रद प्रभाव पड़ता है (पृ. 6)।" इस संदर्भ में इस बात को यहां याद दिलाने की जरूरत है कि विश्व बैंक की रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया है कि तीसरी दुनिया के देशों को उच्च शिक्षा में दिए जाने वाले सार्वजनिक अनुदान को प्राइमरी और सैकेंडरी शिक्षा की तरफ मोड़ देना चाहिए क्योंकि उच्च शिक्षा में सार्वजनिक व्यय के कारण प्राइमरी और सैकेंडरी शिक्षा की उपेक्षा हो रही है और इसी वजह से तीसरी दुनिया के देश शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति नहीं कर पा रहे हैं (वर्ल्ड बैंक प्रतिवेदनः 1994)। जाहिर है कि इस तरह के सुझावों का तात्पर्य यही है कि उच्च शिक्षा को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया जाए।

यूनेस्को के स्थितिपत्र में व्यक्त चिंता को सही परिप्रेक्ष्य में तभी समझा जा सकता है जब हम विश्व व्यापार संगठन के एजेंडे पर दृष्टिपात करें। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि शिक्षा विश्व व्यापार संगठन के एजेंडे का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। शिक्षा को अब व्यापार और सेवा के एक ऐसे क्षेत्र की तरह देखा जाने लगा है जिससे उसी तरह मुनाफा कमाया जा सकता है जिस तरह उद्योग के अन्य क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कंपनियां अन्य देशों से व्यापार द्वारा मुनाफा कमाती हैं। शिक्षा के क्षेत्र में यह कार्य कई रूपों में हो सकता है। अन्य देश के विद्यार्थियों को अपने यहां के शिक्षा संस्थानों में प्रवेश देकर, अपने पाठ्यक्रमों और शैक्षिक प्रौद्योगिकियों को अन्य देशों के शिक्षा संस्थानों में बेचकर, अन्य देशों में अपने यहां के शिक्षा संस्थान या उसकी शाखाएं या केंद्र स्थापित करके, अपने यहां के शिक्षकों और प्रोफेशनलों को दूसरे देशों में शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए भेजकर या ऑन लाइन शिक्षा प्रदान करके किया जा सकता है। इस दृष्टि से विभिन्न देशों के बीच व्यापार और सेवाओं के सामान्य समझौते (गेट्स) के अंतर्गत शिक्षा को शामिल किया जाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा को व्यापार और सेवा की तरह देखने का परिणाम यह होता है कि उसे राष्ट्र निर्माण और व्यक्तित्व निर्माण के माध्यम के रूप में देखने की बजाए लाभ कमाने के एक संसाधन के रूप में देखा जाने लगा है। शिक्षा के व्यवसायीकरण का परिणाम शिक्षा के प्रति पूरे नजरिए में व्यक्त होता है। शिक्षा का व्यवसाय करने वाले के लिए शिक्षक ऐसा विशेषज्ञ भर हो जाता है जिसके पास ऐसा ज्ञान है जिसका उपयोग कर पाठ्यसामग्री का निर्माण किया जा सकता है या जिसकी मदद से शिक्षा रूपी सेवा प्रदान की जा सकती है। ऐसे व्यापारियों के लिए विद्यार्थी मात्र उपभोक्ता होता है जिसे यह विश्वास दिलाना होता है कि उसे हमारे संस्थान से दूसरों से बेहतर उत्पाद (पाठ्यसामग्री) और दूसरों से बेहतर 'सेवा' (शिक्षा) मिलने वाली है जिसके परिणामस्वरूप उन्हें दूसरों की तुलना में उच्च वेतन वाली नौकरी मिलेगी। मैनेजमेंट और आईसीटी की शिक्षा देने वाले निजी शिक्षा संस्थानों के विज्ञापन देखने से इस बात की सच्चाई को आसानी से देखा जा सकता है।

यह कहना उपयुक्त नहीं है कि दूर शिक्षा ने शिक्षा के व्यवसायीकरण को प्रोत्साहित किया है। लेकिन यह सही है कि दूर शिक्षा व्यवसायीकरण के लिए अधिक उपयुक्त माध्यम है। यदि भूमंडलीकरण के दौर में शिक्षा के निजीकरण की कोशिशों से परे जाकर देखें तो भी हम पाते हैं कि पत्राचार द्वारा शिक्षा ने विश्वविद्यालयों को एक ऐसा जरिया प्रदान किया था जिसके द्वारा वे विद्यार्थियों से अधिक शुल्क वसूल सकते थे। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) द्वारा प्रतिबंध लगाए जाने से पहले अन्नामलाई विश्वविद्यालय, चैन्नई; महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक आदि ने बी. एड. को आय का ऐसा ही जरिया बना लिया था। इसी तरह दूर और मुक्त शिक्षा संस्थानों में वसूली जाने वाली

फीस परंपरागत विश्वविद्यालयों से ज्यादा है। खासतौर पर उन कार्यक्रमों में जिनका रोजगार बाजार में अधिक मूल्य आंका जाता है। उदाहरण के लिए बीसीए, एमसीए, बीएड और एमबीए में ली जाने वाली फीस और परंपरागत विश्वविद्यालयों में ली जाने वाली फीस की तुलना द्वारा इसे समझा जा सकता है। यह फर्क और भी ज्यादा नजर आता है जब हम प्राइवेट विश्वविद्यालयों और संस्थानों से तुलना करते हैं। फीस के इस फर्क का संबंध शिक्षा संस्थानों की रोजगार और व्यवसाय बाजार में कायम हुई साख से भी है।

शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा संस्थानों द्वारा शुल्क लिया जाना नयी बात नहीं है। अमरीकी शिक्षाविद डेविड एफ. नोबल का यह कहना बिल्कुल सही है कि शुल्क लिए जाने से ही शिक्षा उपभोग की वस्तु नहीं बन जाती। दरअसल, शिक्षा उपभोग की वस्तु तभी बनती है जब उसको व्यापार के लिए इस्तेमाल किया जाता है। उनके शब्दों में, "उच्च शिक्षा के उपभोगीकरण का संबंध व्यवसायिक लेन-देन के मकसद से शैक्षिक प्रक्रिया को जानबूझकर पण्य वस्तु के रूप में रूपांतरित करके किया जाता है।"(डिजिटल डिप्लोमा मिल्स, पृ. 3)। दूर और मुक्त शिक्षा प्रणाली में इस प्रक्रिया को आसानी से देखा जा सकता है जहां शैक्षिक कार्यक्रम की सफलता उसमें प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या और उनसे प्राप्त होने वाले शुल्क से है। यह शुल्क यदि उस कार्यक्रम के निर्माण और उसे चलाने और उसके रख-रखाव पर होने वाले कुल व्यय से ज्यादा है तो वह सफल कार्यक्रम है और यदि वह उससे कम है और उसे चलाना 'कीमत प्रभाविता' की दृष्टि से नुकसानदेह है तो उसे या तो बंद कर दिया जाता है या फिर ऐसे तरीके निकाले जाते हैं जिससे कि उस कार्यक्रम पर होने वाले व्यय को कम किया जा सके। मसलन, अध्ययन केंद्रों पर अध्यापकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित रहकर दिए जाने वाले शैक्षिक परामर्श की बजाए रेडियो या टेलीविजन द्वारा परामर्श दिया जाता है। इस विधि में एक या दो अध्यापक से काम चल जाता है और ऐसे टेलीकान्फ्रेंस सत्रों के पुनः प्रसारणों द्वारा आगे आने वाले विद्यार्थी-समूहों को भी इनमें शामिल कर लिया जाता है। आमतौर पर इस तरह के टेलीकान्फ्रेंस सत्रों द्वारा होने वाले प्रसारणों में विद्यार्थियों को अध्यापक से संवाद करने की सुविधा रहती है। लेकिन इस बात को प्रायः भुला दिया जाता है कि उतनी ही अवधि में संवाद के लिए उपस्थित विद्यार्थियों की संख्या कई गुना बढ़ जाती है और ऐसे में कुल मिलाकर औसतन उतने ही विद्यार्थी शिक्षक से संवाद स्थापित करने में समर्थ होते हैं जितने किसी एक अध्ययन केंद्र में उतनी ही अवधि के दौरान कुल विद्यार्थी संवाद कर पाते हैं। इस तरह यदि एक टेली कान्फ्रेंस को पचास अध्ययन केंद्र के विद्यार्थी एक साथ देखते हैं तो उनचास केंद्रों के विद्यार्थी इस विधि से संवाद स्थापित करने से वंचित हो जाते हैं। पुनः प्रसारणों में तो संवाद की संभावना पूरी तरह से समाप्त हो जाती है इसलिए उस दौरान विद्यार्थी सिर्फ मूक दर्शक ही बना रहता है। टेलीकान्फ्रेंस द्वारा परस्पर संवाद की मुश्किल यह भी है कि विद्यार्थी प्रायः प्रतिप्रश्न नहीं पूछ पाता। यदि किसी विद्यार्थी ने अध्यापक से प्रश्न पूछा है और अध्यापक के उत्तर से उसके दिमाग में दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है तो उसे दुबारा लाइन जुड़ने का इंतजार करना होगा। तब तक इस बात की भी संभावना है कि जिस विषय पर बात हो रही है वह किसी और दिशा में चली जाए और दुबारा पूछने की बारी आने पर उस प्रश्न को पूछने का औचित्य ही न रहे या वह सत्र ही समाप्त हो जाए। कक्षा में जिस तरह विद्यार्थी कक्षा के दौरान तत्काल दूसरा प्रश्न पूछ सकते हैं। कक्षा समाप्त होने पर अध्यापक के कक्षा से निकलने के दौरान भी उसे अध्यापक से बात करने का अवसर रहता है वह इस यांत्रिक प्रक्रिया में संभव ही नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ऑन लाइन शिक्षा को एक सिद्धांत की तरह पेश किया जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि उच्च शिक्षा के परंपरागत संस्थान यानी विश्वविद्यालय संकट के दौर से गुजर रहे हैं। वे ज्ञान की मौजूदा चुनौतियों को पूरा करने में अक्षम साबित हो रहे हैं। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत ही नहीं दुनिया के लगभग सभी देशों में उच्च शिक्षा की मांग लगातार बढ़ रही है। इन मांगों को पूरा करने के लिए नये कॉलेज और विश्वविद्यालय स्थापित किए जा रहे हैं। भारत में 1950-51 में सिर्फ 27 विश्वविद्यालय थे, सन 2004-05 तक यह संख्या बढ़कर 343 हो गयी थी। इसी तरह कॉलेजों की संख्या जो 1950-51 में सिर्फ 568 थी 2003-04 में बढ़कर 16865 हो गयी है। 1950 में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सिर्फ दो लाख थी जो अब बढ़कर लगभग एक करोड़ हो गयी है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आयु (17 से 23 वर्ष के बीच) वाले कुल युवाओं का सिर्फ सात प्रतिशत ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा है। यानी चौदह करोड़ युवाओं में से तेरह करोड़ युवा अब भी उच्च शिक्षा हासिल करने से वंचित हैं। यदि हम दूसरे देशों से तुलना करें तो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हमारा पिछड़ापन निश्चय ही भयावह है। कनाडा में 99 फीसद, अमरीका में 76 फीसद और पश्चिमी यूरोप में 40 फीसद युवा उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया में यह 18-20 फीसद है (संतोष पांडाः 1999)। विश्व बैंक के अनुसार उच्च शिक्षा का विकास आर्थिक विकास से जुड़ा है। 51 फीसद नामांकन वाले देश आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के सदस्य हैं जबकि 21 फीसद वाले मध्य-आय वाले देश और औसतन छह प्रतिशत वाले निम्न आय वाले देश के अंतर्गत आते हैं (वर्ल्ड बैंकः 1994)। जाहिर है कि उच्च शिक्षा में धीमी प्रगति आर्थिक क्षेत्र में धीमी प्रगति का नतीजा है। अब जब विकास की दर नौ प्रतिशत हो गयी है क्या उच्च शिक्षा में कोई

उल्लेखनीय प्रगति हुई है ? पिछले एक दशक में यह सिर्फ छह से सात प्रतिशत हुई है।

औसतन नौ प्रतिशत विकास दर का दावा करने वाले आर्थिक उदारीकरण के समर्थकों का यह भी कहना है कि भारत और चीन जैसे देश के महाशक्ति बनने की संभावना भी इसीलिए ज्यादा है क्योंकि भारत में युवाओं की संख्या चीन को छोड़कर दुनिया के किसी भी देश से ज्यादा है। युवाओं की बहुलता को कोठारी आयोग ने भी रेखांकित किया था। जब आयोग की रिपोर्ट लिखी गई थी उस समय भारत की पचास करोड़ जनसंख्या में से आधे 18 वर्ष से कम आयु के थे और इसीलिए इसमें भारत को "युवाओं की भूमि" कहा गया था (एजूकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट, पृ . 3)। यही बात अब फिर दोहराई जा रही है। लेकिन यह कहते हुए इस बात को भुला दिया जाता है कि यदि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवाओं में से सिर्फ सात प्रतिशत ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम हैं तो फिर शेष 93 प्रतिशत युवा विकास की प्रक्रिया में किस रूप में शामिल हो रहे हैं। क्या वे विकास के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशलों को प्राप्त करने के भागीदार बन रहे हैं ? क्या उनके पास उत्पादन बढ़ाने के साधन जमीन और पूंजी हैं और क्या रोजगार के क्षेत्र में उन्हें ऐसा रोजगार मिल रहा है जो देश के विकास में मददगार हो रहा है? यह भी प्रश्न है कि यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो युवाओं की इस विशाल सेना के लिए क्या किया जा रहा है?

शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नयी प्रौद्योगिकी के उपयोग का उद्देश्य शिक्षा का व्यापक प्रसार करना हो, उसे ऐसे सामाजिक समूहों तक पहुंचाना हो, जो अब तक उससे वंचित रहे हों और ऐसे ज्ञान को सर्वसुलभ कराना हो, जो परंपरागत तरीकों से पहुंचाने में कठिनाई हो, तो इससे कोई कैसे इंकार कर सकता है। लेकिन क्या इस तर्क को यथावत स्वीकार किया जा सकता है? शिक्षा की नयी प्रौद्योगिकी जो दरअसल सूचना और संचार के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली प्रौद्योगिकी ही है, शिक्षा प्रदान करने के परंपरागत तरीकों विशेष रूप से विश्वविद्यालयों की प्रासंगिकता को खत्म करने में सक्षम है ? संचार की प्रौद्योगिकी का उपयोग शिक्षा के क्षेत्र में किया जाना किसी भी रूप में अनुचित नहीं है। खासतौर पर इसलिए कि इसके द्वारा नवीनतम ज्ञान को बहुत ही अल्प समय में जिज्ञासुओं तक पहुंचाया जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में दृश्य-श्रव्य माध्यमों के उपयोग ने ज्ञान प्रदान करने और उन्हें बोधगम्य बनाने में भी मदद की है। ज्ञान के कई रूपों को जिन्हें लिखे गए या बोले गए शब्दों द्वारा समझाया जाना कठिन होता है, कई मामलों में उन्हें गतिशील दृश्यों द्वारा आसानी से संप्रेषित किया जा सकता है और समझाया जा सकता है। इंटरनेट ने यह सुविधा भी प्रदान की है कि ज्ञान को विभिन्न तरह के माध्यमों का एक साथ उपयोग करते हुए शिक्षार्थी तक पहुंचाया जा सकता है। शिक्षार्थी अपने अध्यापक और दूसरे विद्यार्थियों से संवाद कर सकता है। इस तरह कक्षाओं में रूबरू पढ़कर जो ज्ञान विद्यार्थी हासिल करता है उसे वह ऑन लाइन भी हासिल कर सकता है। इन सभी बातों को स्वीकार करते हुए भी इसे शिक्षा प्रदान करने के परंपरागत माध्यमों के ऐसे विकल्प के रूप में देखना जो भविष्य में उनका स्थान ले लेगी, क्योंकि यह परंपरागत रूपों से बेहतर, उपयोगी और श्रेष्ठ है, क्या इसे स्वीकार किया जा सकता है ?

ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय की संकल्पना

इस संदर्भ में ऑन लाइन शिक्षा के समर्थकों के तर्कों को समझना बहुत जरूरी है। ऑन लाइन शिक्षा के समर्थकों का तर्क यह है कि जब ज्ञान कंप्यूटर और नेटवर्क कनेक्शन के माध्यम से सभी को उपलब्ध हो सकता है तब ज्ञान के गेटकीपर के रूप में विश्वविद्यालय की स्थिति स्वतः ही कमजोर हो जाती है। आगे आने वाले दिनों मे ज्ञान प्रदान करने के मामले में परंपरागत विश्वविद्यालयों को निगम प्रयोगशालाएं और ग्लोबल कंसलटेंसीज के साथ तगड़ी प्रतियोगिता करनी होगी। शिक्षा को मान्यता प्रदान करने की दृष्टि से ज्ञान का उत्पादन करने वाली माइक्रोसोफ्ट या सिस्को के प्रमाणपत्र विश्वविद्यालयों की उपाधियों की तुलना में कहीं ज्यादा मूल्यवान माने जाएंगे (पुटिंग दि युनिवर्सिटी ऑन लाइन, पृ. 2)। यह भी दावा किया जा रहा है कि अब ज्ञान इतने रूपों में उपलब्ध हो रहा है कि विश्वविद्यालयों द्वारा ज्ञान की परंपरागत परिभाषा ही खतरे में पड़ गई है। ऑनलाइन शिक्षा ने विश्वविद्यालयों की भौगोलिक सीमाओं के सामने खतरा खड़ा कर दिया है। यह कहा जा रहा है कि "वर्चुअल पाठ्यक्रमों में लगातार बढ़ता परिष्कार और घटती कीमतों ने भौगोलिक सीमाओं के वर्चस्व का लोप कर दिया है। अपने ही विश्वविद्यालयों के वर्चुअल पाठ्यक्रमों में इंटरनेट के जरिए प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या में जो बढ़ोतरी हो रही है, ऐसी स्थिति में दूसरे संस्थानों द्वारा उपलब्ध पाठ्यक्रम उनसे सिर्फ एक 'माउस क्लिक' की दूरी पर हैं। यह उन सभी 'दूसरे' संस्थानों के लिए सत्य हैं चाहे वह दिजोबौती में स्थित हो या केलिफोर्निया अथवा न्यूयार्क के बहु-परिसर प्रणाली का हिस्सा हो" (एबिल्स का कथन, पुटिंग दि युनिवर्सिटी ऑन लाइन से उद्धृत, पृ. 2)।

उपर्युक्त पुस्तक के लेखक द्वय जेम्स कॉनफोर्ड और नील पोलोक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का उदाहरण पेश करते हुए यह तर्क भी प्रस्तुत करते हैं कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद समुद्रपारीय खतरे से राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा करने के लिए रक्षा बजट द्वारा विश्वविद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा उपलब्ध कराई गई, कल्याणकारी व्यवस्था के विस्तार की जरूरत के लिए सामाजिक विज्ञानों को और राष्ट्रीय संस्कृति के आदर्श को परिभाषित करने की जरूरत के लिए मानविकी की शिक्षा को संरक्षण और संवर्धन दिया गया। लेकिन सोवियत संघ

के विघटन के बाद विश्वविद्यालयों के नीचे से तीन पैरों वाला यह स्टूल खिसक गया है। इन परिस्थितियों में, विश्वविद्यालयों के लिए अनुदानों का प्रबंध करने वाले राष्ट्र-राज्य की अब इसमें उतनी दिलचस्पी नहीं रह गयी है। उनके अनुसार, "भूमंडलीकरण और उत्तर-आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के जरिए यदि सूचना प्रौद्योगिकी को 'समस्या क्षेत्र' का हिस्सा समझा जा रहा है जिसमें विश्वविद्यालय संघर्ष करते नजर आ रहे हैं तो इसी में 'समाधान क्षेत्र' का व्यापक हिस्सा भी मौजूद है" (उप. पृ. 3)। इस प्रकार, इन दोनों लेखकों के अनुसार, "सूचना प्रौद्योगिकी यदि विश्वविद्यालय की सीमाओं को अस्थिर कर रही हैं तो उनका उपयोग सीमाओं का विस्तार करने के लिए भी किया जा सकता है। यदि इनके कारण विश्वविद्यालयों के विखंडित होने का खतरा पैदा हो गया है तो ये इनको एक दूसरे से बांध भी सकती हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों का उपयोग करते हुए मूलगामी रूप से उच्च शिक्षा प्रावधान की पुनर्सरंचना और नये माहौल के अनुरूप विश्वविद्यालय को नये सिरे से तैयार करने की दृष्टि से ऑनलाइन और वर्चुअल विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के भविष्य का अत्यंत प्रबल दर्शन बनकर उभरा है" (उप. पृ. 3)।

ऑन लाइन विश्वविद्यालय के समर्थक जॉन टिफिन और ललिता राजासिंघम भविष्य के ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय को सभी विश्वविद्यालयों की तरह ऐसा विश्वविद्यालय मानते हैं जो अति-उच्चस्तरीय किस्म की समस्याओं के ज्ञान के अनुप्रयोग के अध्ययन के लिए अध्यापकों और विद्यार्थियों को एक साथ लाएगा। इस अध्ययन में अनुसंधान के साथ-साथ अध्यापन भी शामिल होगा। इसका भी एक परिसर होगा जो लाइब्रेरी जैसी सहायक सेवाएं और समाजीकरण और गहन शिक्षण के संदर्भों के लिए लोगों को जगह प्रदान करेगा। यह भी स्नातक, स्नातकोत्तर और डॉक्टर स्तर की उपाधियां प्रदान करेगा जो गुणवत्ता और महत्त्व की दृष्टि से परंपरागत विश्वविद्यालयों से तुलनीय होंगी (दि ग्लोबल वर्चुअल युनिवर्सिटी, पृ. 136)। जॉन टिफिन और ललिता राजासिंघम ने परंपरागत विश्वविद्यालयों से ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंतर को बताते हुए कहा है कि "प्रत्येक दस या बीस अतिरिक्त विद्यार्थियों का मतलब यह नहीं है कि एक अतिरिक्त अध्यापक या एक अतिरिक्त क्लासरूम की व्यवस्था करना। जितने ज्यादा विद्यार्थी प्रवेश लेंगे उतना प्रति विद्यार्थी व्यय कम होता जाएगा और उतना ही अधिक गुणवत्ता वाले शैक्षिक कार्यक्रमों को उपलब्ध कराया जा सकेगा क्योंकि पाठ्यसामग्री के लिए निवेश करने को अधिक पैसा उपलब्ध होगा और ज्यादा उच्चस्तरीय शिक्षकों को आकर्षित किया जा सकेगा" (उप. पृ. 136)। इस प्रकार का विश्वविद्यालय राष्ट्रीय और स्थानीय मसलों की बजाए भूमंडलीय और क्षेत्रीय मसलों की ओर अभिमुख होगा। फिर भी, ऐसा विश्वविद्यालय सहायता और मान्यता के लिए परंपरागत विश्वविद्यालयों की तरह स्थानीय और राष्ट्रीय संसाधनों पर निर्भर नहीं रह सकता। ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय को अपनी निगम पहचान बनानी होगी। हां, जब तक भूमंडलीय मान्यता उपलब्ध नहीं हो जाती उन्हें राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त करनी पड़ेगी। राज्यों से मदद लेने वाले परंपरागत विश्वविद्यालयों में प्रवेश को और उपाधि प्राप्त करने के समय को प्रतिबंधित करने की कोशिश की जाती है जबकि निगम ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय अधिक से अधिक विद्यार्थियों को प्रवेश देने का प्रयत्न करेगा और उनको इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा कि वे जब तक चाहें तब तक के लिए विद्यार्थी बने रह सकते हैं (उप. पृ. 137)। इनमें किसी उपाधि कार्यक्रम को सत्रों या लंबी अवधि की बजाए सप्ताहों के हिसाब से प्रदान किया जाएगा। विद्यार्थी ने यदि अध्ययन के किसी क्षेत्र में पहले से ही पर्याप्त ज्ञान और योग्यता अर्जित कर ली है तो वह कुछ सप्ताहों के अध्ययन के बाद ही उपाधि प्राप्त कर सकेगा। यानी यह उसकी इच्छा पर है कि वह कितना जल्दी या कितना धीरे अपने अध्ययन को पूरा करता है। किसी भी परंपरागत विश्वविद्यालय के अध्यापक ज्ञान के विस्तार के अनुसार अपने को निरंतर सक्षम नहीं रख सकते, यह काम सिर्फ ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय ही कर सकता है (उप. पृ. 137)।

उच्च शिक्षा का लोकतंत्रीकरण या निगमीकरण ?

वर्चुअल विश्वविद्यालय की अवधारणा के संबंध में दिए गए इन तर्कों को दो भागों में विभाजित कर देखा जा सकता है। एक, यह कहा जा रहा है कि सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में जो नयी खोजें हुई हैं उसने ज्ञान और शिक्षा की परंपरागत संकल्पना को पूरी तरह बदल दिया है, जिसके साथ परंपरागत विश्वविद्यालय चलने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं। ज्ञान विश्वविद्यालय की दीवारों में ही कैद नहीं है बल्कि उसे पूरे जीवन निरंतर हासिल करने की जरूरत है। किसी विश्वविद्यालय से एक बार डिग्री हासिल करने से निरंतर बदलते ज्ञान के साथ व्यक्ति अपने को प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण बनाए नहीं रख सकता। इस नयी प्रौद्योगिकी के कारण यही एक तरीका है जो उच्च शिक्षा को भूमंडलीय स्तर पर सभी को सब समय और सब जगह उपलब्ध करा सकती है। दो, ऑनलाइन शिक्षा परंपरागत विश्वविद्यालयों की तुलना में सस्ती और सर्वसुलभ है और इसे किसी भी देश का कोई भी नागरिक अपने देश में रहते हुए हासिल कर सकता है। इसमें भौगोलिक सीमाएं व्यर्थ हो जाती हैं और अध्यापकों पर निर्भरता समाप्त हो जाती है। इसने राष्ट्र-राज्य की अवधारणा को कमजोर कर दिया है और ज्ञान को सही माने में भूमंडलीय और लोकतांत्रिक बना दिया है। ऑन लाइन शिक्षा के समर्थकों का दावा यह है कि नयी शैक्षिक प्रौद्योगिकी के द्वारा शिक्षा की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। स्पष्ट ही ये

अवधारणाएं और दावे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं और यदि ऑनलाइन शिक्षा के समर्थक जो कह रहे हैं वह यथार्थ में परिणत हो सकता है तो उच्च शिक्षा का भविष्य ही अत्यंत उज्ज्वल नहीं होने जा रहा है बल्कि मानवता के लिए भी यह अत्यंत शुभकारी होगा। इसलिए इन बातों की सावधानी से परीक्षा करना जरूरी है।

यहां पहले उद्धृत जेम्स कोनफोर्ड और नील पोलोक के उस तर्क को याद करना जरूरी है जिसमें इन लेखकों ने सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिका में उच्च शिक्षा में सरकारी सहायता के आधार के खिसकने को रेखांकित किया है। इसका अर्थ क्या यह नहीं है कि सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था ने ही अमेरिका सहित पूंजीवादी देशों पर यह दबाव पैदा कर रखा था कि यदि उन्हें अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो अपनी कथित लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को कल्याणकारी व्यवस्था के रूप में पेश करना होगा जिसका एक आयाम शिक्षा के क्षेत्र में राज्य अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करे जैसाकि सोवियत संघ और अन्य समाजवादी व्यवस्था करती है। लेकिन जब सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप की समाजवादी व्यवस्थाएं विघटित हो गईं तो फिर अमेरिका सहित पूंजीवादी देशों पर शिक्षा के क्षेत्र की जिम्मेदारियों के पालन करने का दबाव भी समाप्त हो गया। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया और सोवियत संघ का विघटन कमोबेश साथ-साथ घटित हुए हैं। इसलिए शिक्षा के व्यवसायीकरण को ऑन लाइन शिक्षा या ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय की अवधारणाओं के संदर्भ में देखने की बजाए शिक्षा के व्यवसायीकरण के संदर्भ में इन अवधारणाओं को देखना होगा।

इस व्यवसायीकरण का संबंध भूमंडलीकरण के इस दौर में आर्थिक नवउदारतावाद की विचारधारा से है। जैसाकि अमरीकी विचारक नॉम चोमस्की का मानना है कि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि नवउदारतावाद की विचारधारा शिक्षा और स्वास्थ्य के प्रति राज्य की जिम्मेदारी को कमजोर करती है, असमानता को बढ़ावा देती है और आय में श्रम के योगदान को घटाती है (प्रोफिट ओवर पीपुल, पृ. 13)। यह बात सिर्फ तीसरी दुनिया के देशों के लिए ही सच नहीं है बल्कि विकसित औद्योगिक देशों के संदर्भ में भी सत्य है। इसका प्रमाण यह है कि पिछले डेढ़ दशक में अमरीका और यूरोपीय राष्ट्रों ने शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक सेवाओं में अनुदान में भारी कटौती की है। सोवियत संघ के विघटन के बाद अमरीका दुनिया की सबसे बड़ी आर्थिक और सैन्य शक्ति बनकर उभरा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में पूंजीवाद की श्रेष्ठता को चुनौतिहीन मान लिया गया है। बाजार ही सर्वशक्तिमान और निर्णायक है। बाजार ही यह तय करता है कि हमें किस चीज की जरूरत है और किस चीज का हमें उपभोग करना चाहिए। इस बाजार में जो भी आता है वह उत्पाद की तरह आता है जिसे कि बेचा और खरीदा जाना है। बाजार के विस्तार ने उन चीजों को भी इस दायरे में ला दिया है जिसे अब तक बेचे और खरीदे जाने की चीज नहीं समझा जाता था। शिक्षा भी इस रूप में एक उपभोग की वस्तु है जबकि अब तक सभी नागरिकों को शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का कर्त्तव्य समझा जाता था और शिक्षा हासिल करना नागरिकों का मूल अधिकार था। यह और बात है कि भारत सहित तीसरी दुनिया के अधिकांश देश अभी तक अपने यहां से निरक्षरता भी समाप्त नहीं कर सके हैं।

शिक्षा मनुष्य का सार्वभौम अधिकार नहीं है, यह विचार अब जोर पकड़ता जा रहा है। जो भी जितना भुगतान कर सकता है वह उसी के अनुसार उसी स्तर की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी है। जिस प्रकार बाजार में उत्पाद की गुणवत्ता और खरीदने की क्षमता से उसका खरीदा जाना और बेचा जाना तय होता है, यह बात शिक्षा उद्योग पर भी लागू होती जा रही है। सूचना और संचार की नयी प्रौद्योगिकी का उपयोग शिक्षा को बाजार के एक उत्पाद में बदलने के लिए किया जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि इस प्रौद्योगिकी से हम सूचना समाज की तरफ बढ़ रहे हैं। इसी प्रौद्योगिकी को जब शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाता है तो उसे शैक्षिक प्रौद्योगिकी कहा जाता है। शैक्षिक प्रौद्योगिकी में क्या संभावना है इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। जिस ग्लोबल वर्चुअल विश्वविद्यालय की संकल्पना पेश की जा रही है क्या वह विद्यार्थियों को यह सुविधा निःशुल्क प्रदान करने जा रहा है ? इसके विपरीत जैसाकि स्वयं जॉन टिफिन और ललिता राजासिंघम ने कहा है इस तरह के विश्वविद्यालयों को निगम आधारित होना होगा। इसका अर्थ ही यह है कि विश्वविद्यालय को एक शिक्षा संस्थान की तरह नहीं बल्कि एक निगम की तरह काम करना होगा। वह जो भी पाठ्यसामग्री और उपाधि प्रदान करेगा उसके लिए वह विद्यार्थियों से निश्चित भुगतान वसूलेगा। बाजार का मूलमंत्र खरीदने और बेचने के साथ-साथ गलाकाट प्रतियोगिता भी है। यह प्रतियोगिता उत्पादों की गुणवत्ता को उतना तय नहीं करती जितना कि उत्पादों की मार्केटिंग को। यानी महत्त्वपूर्ण यह हो जाता है कि आप अपनी उपाधियां और अपनी पाठ्यसामग्री कितनी सफलता के साथ बेच सकते हैं और इसके लिए किस तरह उपभोक्ताओं को लुभा सकते हैं। भूमंडलीकरण के कारण शिक्षा के क्षेत्र में जो परिवर्तन अमरीका और यूरोप में घटित हो रहे हैं उस पर टिप्पणी करते हुए डेविड एफ. नोबल कहते हैं: "पिछले दो दशकों में विश्वविद्यालयों में जो परिवर्तन घटित हुआ है वह यह है कि परिसर को एक ऐसी दृष्टि से देखा जाने लगा है जहां योजनाबद्ध ढंग से बौद्धिक क्रियाकलापों को बौद्धिक पूंजी यानी बौद्धिक संपत्ति में रूपांतरित किया गया है। इस रूपांतरण के दो चरण हैं। पहला, जिसकी शुरुआत बीस साल पहले हुई थी और जो अब भी जारी है। वह है विश्वविद्यालय के अनुसंधान प्रकार्य का उपभोगीकरण किया जाना, वैज्ञानिक और इंजीनियरिंग ज्ञान को

ऐसे स्वामित्व वाले उत्पादों में रूपांतरित करना जो व्यावसायिक दृष्टि से उपयोगी हो ताकि उस पर स्वामित्व स्थापित किया जा सके और बाजार में खरीदा और बेचा जा सके। दूसरा, विश्वविद्यालय के शैक्षिक प्रकार्य पाठ्यक्रमों को पाठ्यसामग्री में बदलना और सिखाने की प्रक्रिया को ऐसे स्वामित्व वाली क्रिया में रूपांतरित करना जो व्यावसायिक दृष्टि से उपयोगी हो ताकि जिस पर स्वामित्व स्थापित किया जा सके और जिसे बाजार में खरीदा और बेचा जा सके। पहले चरण में विश्वविद्यालय उत्पादन, पेटेंट बेचने वाली और विशिष्ट लाइसेंस देने वाली जगह बन गए। दूसरे चरण में वे उत्पादन के साथ-साथ कॉपीराइट वाले वीडियो, पाठ्यसामग्री, सीडी-रोम और वेबसाइट के मुख्य बाजार बन गए" (डिजिटल डिप्लोमा मिल्स, पृ. 26)। भारत अभी इस स्थिति तक नहीं पहुंचा है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि इस व्यापक व्यवसायीकरण से यहां के विश्वविद्यालय अपने को बचा पाएंगे। शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर रोजगार केंद्रित पाठ्यक्रमों में जिस तरह निजी शिक्षा संस्थान पनप रहे हैं और वे अपने संस्थानों को लोकप्रिय बनाने के लिए जिस तरह से अपना प्रचार कर रहे हैं उनमें और किसी अन्य बाजार केंद्रित कंपनी में कोई अंतर नहीं है।

प्रश्न यह है कि शिक्षा के क्षेत्र की वास्तविक समस्याओं का हल क्या शैक्षिक प्रौद्योगिकी के द्वारा संभव है ? क्या प्रौद्योगिकी ज्ञान का विकल्प बन सकती है ? देखा यही जा रहा है कि यह आधुनिकतम प्रौद्योगिकी शिक्षार्थियों की जरूरतों को प्राथमिकता देने की बजाए बहुराष्ट्रीय निगमों के लक्ष्यों के अनुसार अपनी प्राथमिकता तय कर रही हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि शिक्षा अपने मूल उद्देश्य से भटकती जा रही है और निजी क्षेत्र के मुनाफाखोरों के हाथों का खिलौना बन रही है। संसद में जो प्राइवेट विश्वविद्यालय विधेयक विचाराधीन है, यदि वह स्वीकार कर लिया जाता है और विदेशी शिक्षा संस्थानों और विश्वविद्यालयों को भारत में काम करने की खुली छूट मिल जाती है तो शिक्षा के व्यवसायीकरण की प्रक्रिया और तेज हो जाएगी। भारत जैसे देश में जहां आबादी का बड़ा हिस्सा अभी किसी भी तरह की शिक्षा से वंचित है वहां शिक्षा का व्यवसायीकरण विषमता को निश्चय ही बढ़ाएगा। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग के नाम पर शिक्षा पर यह हमला भारत जैसे विकासशील देश के लिए ही चिंता का विषय नहीं है (जिसकी हल्की सी अभिव्यक्ति यूनेस्को के उच्च शिक्षा पर स्थितिपत्र में हुई है और जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है) बल्कि विकसित देशों के बुद्धिजीवियों और शिक्षाविदों को भी परेशान कर रही है। चाहे प्रश्न शिक्षा में प्रौद्योगिकी के उपयोग का हो या प्रौद्योगिकी की शिक्षा का हो, मूल प्रश्न तो स्वभावतः शिक्षा के सार्वभौमीकरण और लोकतंत्रीकरण का है। ◆

संदर्भ ग्रंथ

- न्गुगी वा थ्योंगो : औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्तिः शिक्षा और संस्कृति की राजनीति (हिंदी अनुवाद : आनंदस्वरूप वर्मा, प्रथम हिंदी संस्करणः 1999; ग्रंथशिल्पी, दिल्ली।
- Sabyasachi Bhattacharya (Editor) :The Contested Terrain : Perspectives on Education in India; 1998; Orient Longman Ltd. New Delhi.
- कृष्ण कुमार : गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद; 2006; ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
- Education and National Development : Report of the Education Commission 1964-66; 1971; National Council of Eduacational Research and Training, New Delhi.
- UNESCO 2003 Higher Education in a Globalised Society, UNESCO Education Position Paper, URL: http://unesdoc.unesco.org/images/oo13/001362/136247e.pdf
- Vijendra Sharma (2000) : Crisis of Higher Education in India, CPI (M) Publication, New Delhi.
- World Bank (1994) Higher Education : The lessons of Experience, Washington DC.
- Santosh Panda (2000): Developments, Networking and Convergence in India, in Keith Herry, (Eds.) Higher Education through Open and Distance Learning, Routledge, London.
- James Cornford and Neil Pollock (2003): Putting the University on Line; The Society for Research into Higher Education and Open University Press, UK.
- David F. Noble(2001) : Digital Diploma Mills; Monthly Review Press; New York.
- John Tiffin and Lalita Rajasingham (2003): The Global Virtual University; RoutledgeFalmer, London and NewYork.
- Government of India, 1995, The Private Universities (Establishment and Regulation) Bill. Bill No. LIX of 1995, Introduced in the Rajya Sabha on 22nd August, 1995 by the Minister of HRD, New Delhi.